© 2015 IJSRSET | Volume 1 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

गर्गसंहिता में अङ्गी रस का निर्धारण

सुनील कुमार सिन्हा

शोधछात्र-संस्कृत विभाग,

पटना विश्वविद्यालय

पटना, बिहार, भारत।

सारांश – श्रीकृष्ण और श्रीराधा के चरित का वर्णन वाला पुराण–काव्य गर्गसंहिता के रचयिता गर्गाचार्य हैं। गर्गसंहिता के दस खण्डों में श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण चरित वर्णित है। इसमें रसों का चमत्कार आद्योपान्त विद्यमान है। इसमें अङ्गीरस शृंगार है तथा वीर, अद्भुत् और भक्ति आदि इसके अङ्ग रस हैं।

प्रमुख शब्द – गर्गसंहिता, अङ्गीरस, अङ्गरस, श्रीकृष्ण, राधा, काव्यशास्त्र इत्यादि।

गर्गसंहिता स्पष्टत: श्रीकृष्ण के ज्योतिषी महामुनि गर्गाचार्य के स्वानुभव से रचित सम्पूर्ण कृष्ण–चरित है। ऐसा आभास इस संहिता के पारायण से प्रतीत होता है। यह सर्वथा कवि–कल्पित वृत्त–वर्णन है जिसका आधार कृष्ण की पौरणिक गाथाएँ हैं, तथा भागवतपुराण के दशम स्कन्ध में वर्णित कृष्ण की कतिपय लीलायें हैं। फिर भी गर्गसंहिता के लेखक ने कृष्ण के चरित को व्यापक परिवेश में देखा है और भागवतपुराण में अचर्चित किन्तु कृष्ण–कथा की मध्यकालीन परम्परा में समासीन श्रीराधा का भी वृत्त यहाँ वर्णित है। गर्गसंहिता में गोलोकखण्ड से ही राधा–कृष्ण का अद्वैत प्रतिपादित है।

इस प्रसङ्ग में गर्गसंहिता के गोलोकखण्ड का प्रस्तुत श्लोक स्मरणीय है–

वृषभानुसुताराधा या जाता कीर्तिमन्दिरे।

तस्या: पतिरयं साक्षात् तेन राधा पति: स्मृत:॥ (1)

वृषभानु (राधा के पिता) ने गर्गमुनि से आग्रह किया था कि वे राधा का परिणय श्रीकृष्ण से करा दें। जिसपर गर्ग ने उन दोनों का विवाह स्वयं न कराने की बात कही, क्योंकि उन दोनों का परिणय भाण्डीर वन में स्वयं ब्रह्मा के द्वारा कराया जाना निश्चित है। इस घटना का विस्तृत वर्णन गोलोकखण्ड के सोलहवें अध्याय में हुआ है।

इस प्रकार गर्गसंहिता का मुख्य प्रतिपाद्य कृष्ण और राधा के दिव्य प्रेम तथा तदंडागत समस्त कृष्णलीलाओं का विवरण प्रस्तुत करना है। इसी विषय–वस्तु के आलोक में गर्गसंहिता के रसोद्भावन का विवेचन करना है। गर्गसंहिता स्वरूपत: काव्य है। अपनी शैली, कवि की कल्पना तथा वस्तु–वर्णन एवं नायकादि के निरूपण की दृष्टि से यह सर्वथा काव्यात्मक है। गर्गसंहिता के आरम्भ में जो मंगलाचरण के श्लोक हैं उनमें वैधानिक रूप से प्रथम पद्य इस प्रकार हैं–

शरद्-विकच-पंकज-श्रियमतीवविद्वेषक

मिलिन्द-मुनि-सेवितं कुलिश-कंज-चिह्नवृतम्।

स्फुरत्-कनक-नूपुरं दलित-भक्त-तापत्रयं

चलद्-द्युति-पदद्वयं दि दधामि राधापतेः।। (2)

यह श्लोक संस्कृत साहित्य में बहुत प्रचलित पृथ्वी छन्द में प्रस्तुत है जिसे पण्डितराज जगन्नाथ ने अपनी ललित पदावली से अलंकृत करके अपने अनेक पद्यों में प्रयुक्त किया है। प्रस्तुत पद्य का सौन्दर्य भी पण्डितराज जगन्नाथ के पृथ्वी छन्द में रचित पद्यों का सामीप्य प्रदर्शित करता है।

अपनी शब्दावली, ललित पदावली तथा विषय-वर्णन की सरसता से गर्गसंहिता संस्कृत काव्य के ऐसे प्रतिमान को छूती है जिसका एक छोर पुराणों के वर्णन की ओर जाता है तो दूसरा छोर संस्कृत गीतिकाव्यों, विशेषतः लहरी-काव्यों की सीमा में प्रवेश करता है। इस संहिता के साथ एक समस्या यह है कि यह सामान्य संस्कृत काव्यों के समाज सर्गबद्ध नहीं है, अपितु पौराणिक प्रबन्धन की दृष्टि से विविध खण्डों और तदन्तर्गत अध्यायों में विभक्त है। फिर भी यह काव्य और पुराण का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करती है।

यमुना का स्तोत्र जो इसके माधुर्य खण्ड के सत्रहवें अध्याय में वर्णित है उसमें स्पष्टतः पण्डिराज जगन्नाथ जैसे कवि की यमुना-लहरी अथवा स्तोत्र-कवियों के यमुना-स्तवन की छटा देखी जा सकती है। संस्कृत के सभी ललित छन्दों में रचित यह यमुना स्तुति गर्गसंहिता के कवित्व का निकष है। यहाँ एक ऐसा श्लोक देख सकते हैं जिसमें संस्कृत के वृत्त्यनुप्रास का जमकर प्रयोग हुआ है-

गोपी-गोकुल-गोप-केलि-कलिते कालिन्दि कृष्णप्रभे

त्वत्कूले जल-लोल-गोल-विचलत्- कल्लोल- कोलाहलः।

तत्कांतार कुतूहलालि- कुलकृत-झंकार-केकाकुलः

कूजत्-कोकिल-संकुलो व्रजलता-अलङ्कारभृत् पातु माम्।। (3)

स्मरणीय है कि संस्कृत-काव्यशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत शब्द-चित्र के उदाहरणों से यह सर्वथा भिन्न परिवेश में प्रस्तुत पद्य है। क्योंकि इसमें प्रयुक्त 'मधुर-कोमलकान्त-पदावली' यमुना के प्रति भक्ति के अतिशय के कारण सामान्य रूप से 'देवादिविषया रति' के कारण भाव है और कपितय आचार्य इसे भक्ति रस या माधुर्य रस के अन्तर्गत भी रखेंगे। ऐसी स्थिति में यह पदावली उस भाव की पोषक ही कही जाएगी।

ऐसी व्यवस्था के कारण काव्य-रूप गर्गसंहिता में रस की दृष्टि अन्वेषणीय होती है। कवियों और आचार्यों ने काव्य को रसमय कहा है। आचार्य मम्मट चाहे काव्य-दोष की परिभाषा दें अथवा काव्य गुण की, वे उभयत्र रस को काव्य का मुख्य तत्त्व मानते हैं। गुण की परिभाषा में तो उन्होंने रस को काव्य का अङ्गी कहा है।

गर्गसंहिता अपने विशाल आकार में भी पौराणिक प्रकृति का काव्य-ग्रन्थ ही है। जिसमें रसमयता आद्यन्त प्राप्त होती है। रस एकात्मक होने पर भी विभावादि की व्यवस्था के कारण अनेक रूपों का होता है। और जब अनेक रूप वाले पदार्थ मिलते हैं तो स्वभावतः उनमें गौण-प्राधान्य भाव का प्रश्न खड़ा होता है। विगत अध्याय में रस के भेदों का विवरण दिया जा चुका है। इसलिए यहाँ यह निर्णय करना आवश्यक है कि उन रसों में किसकी प्रधानता है और कौन रस गौण कहे जाने के योग्य हैं। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक में प्रतिपादित किया है कि काव्य व्यङ्ग्य-व्यञ्जक के समूह के रूप में विभिन्न रसों का संकलित स्थान होने के कारण रसभावमय होता है। कवि को किसी एक रस पर बहुत बल देना चाहिए-

व्यङ्ग्य-व्यञ्जक भावेऽस्मिन् विविधे सम्भवत्यपि।

रसादिमय एकस्मिन् कविः स्यादवधानवान्।। (4)

इस कारिका की वृति में उन्होंने स्पष्ट किया है कि सभी प्रबन्ध-काव्यों में एक रस प्रधान अर्थात् अङ्गी होना चाहिए। उन्होंने उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि रामायण में करुण रस की प्रधानता है ओर महाभारत में शान्त रस प्रधान है।

आगे चलकर विश्वनाथ कविराज ने इस अनुशंसा का दूसरा रूप महाकाव्य के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया कि महाकाव्य में शृंगार, वीर या शान्त-इन तीनों में से कोई एक रस ही अङ्गी होता है।

शृंगारवीर शान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते। (5)

अब प्रश्न उठता है कि गर्गसंहिता में इन तीन रसों में कौन रस प्रधान है। गर्गसंहिता के काल तक परिनिष्ठित नव (9) रसों के अतिरिक्त भी भक्ति, माधुर्य तथा वात्सल्य जैसे भावों को भी रस की कोटि में स्थान दिया जा चुका था। किन्तु यहाँ हम मानक स्थिति में ही समालोचना करेंगे।

सामान्य रूप से देखते हैं तो विश्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित तीनों रसों की प्रधानता का यहाँ संशय होता है।

1. वीर रस की प्रधानता का प्रश्न – वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है। किसी भी कार्य को करने के लिए मन में विशेष प्रकार की सत्वर क्रिया के सजग होने को उत्साह कहा जाता है। अतएव बल, पराक्रम, शक्ति, प्रताप, प्रभाव इत्यादि का जहाँ विषय हो वह वीर रस माना जाता है। गर्गसंहिता में भगवान् कृष्ण द्वारा विभिन्न दैत्यों, अधर्मियों, प्रजापीड़कों के वध में जो उत्साह दिखाया गया है वह वीर रस का स्थल है। यहाँ प्राय: प्रत्येक खण्ड में कृष्ण की वीरता- युद्धवीरता और धर्मवीरता- का निरूपण किया गया है। कृष्ण शम्बर, भौमासुर, कंस इत्यादि का वध करते हैं। उनकी वीरता बालकाल में ही अत्यधिक मुखर होती है जिसे उनकी बाल-लीला कहते हैं। गर्गसंहिता के विश्वजित् खण्ड में प्रद्युम्न अपनी यादवी सेना के साथ विभिन्न प्रदेशों की यात्रा पर जाकर उन-उन देशों पर विजय प्राप्त करते हैं। कालिदास ने रघुवंश में जिस प्रकार रघु की दिग्विजय यात्रा [8] का वर्णन किया है। उसी प्रकार समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में भी भारत के विभिन्न प्रदेशों पर उस सम्राट की दिग्विजय तथा प्रशासन की चर्चा की गई है। इसी के उपलक्ष्य में स्तम्भ पर प्रशस्ति का अंकन कराया गया था। प्रघुम्न की दिग्विजय यात्रा भी कम नहीं है किन्तु यह गर्गसंहिता के सप्तम खण्ड में ही सीमित है। कृष्ण द्वारा दैत्य-वध भी आरम्भिक दो खण्डों में ही सिमटा हुआ है। कृष्ण के पौत्र अनिरूद्ध की विजय-यात्रा भी अश्वमेध खण्ड में ही परिमित है। वीर रस के प्रसङ्गों के आनुषङ्गिक होने के कारण तथा उनके कुछ खण्डों में ही वर्णित होने से इस रस को हम प्रधानता का स्थान नहीं दे सकते। वीर रस इस संहिता का अङ्ग-रस भले ही कहा जाय। इसे प्रधान रस नहीं कहा जा सकता।

2. शान्त रस की प्रधानता का प्रश्न – शान्त रस का स्थायिभाव निर्वेद कहा गया है। संसार की क्षणभंगुरता या अनित्यता को देखकर सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य उत्पन्न होना निर्वेद कहलाता है। इसे ही 'शम' भी कहते हैं। भरत ने शान्त रस को अमान्य ठहराया है। क्योंकि उसका रंगमञ्च पर अभिनय नहीं हो सकता। इसीलिए वे निर्वेद का भी वर्णन नहीं करते। भरत निर्वेद को सञ्चारी भावों में स्थान देते हैं। किन्तु मम्मट ने निर्वेद को स्थायिभव कहते हुए शान्त रस को नवम रस के रूप में मान्यता दी हैं-

निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रस:।[6]

पण्डितराज जगन्नाथ ने अपने रसगंगाधर (पृष्ठ 39) में कहा है कि नित्यानित्य वस्तु के विचार से उत्पन्न होने वाला विषय-विराग निर्वेद है और वही शान्त रस का स्थायिभाव है। शान्त रस का मञ्चन भले ही न हो किन्तु प्रबन्ध काव्यों में यह स्थान पाता ही है। तभी तो आनन्दवर्धन ने इसे महाभारत का अङ्गी रस कहा।

जहाँ तक गर्गसंहिता का प्रश्न है इसका नवम खण्ड विज्ञान-खण्ड कहलाता है। जिसमें व्यासजी भक्ति और दर्शन दोनों का विस्तार से प्रतिपादन करते है। वे द्वारका में आकर अपने दार्शनिक चिन्तन से लोगों को तृप्त करते हैं। उनके सामने उग्रसेन सकाम कर्मों की गति और लक्षण तथा भेद का निरूपण करने का आग्रह करते हैं। व्यासजी ने निष्काम कर्मों को मोक्षप्रद तथा सकाम कर्मों को बन्धन कहा-

सनिमित्तं च यत्कर्म बन्धनं विद्धि यादव।

अनिमितं च यत्कर्म मोक्षदं परमं शुभम्॥4॥ [7]

शान्त रस से सम्बद्ध सामग्री विज्ञानखण्ड तक ही सीमित है। महाभारत के समान यह ग्रन्थ के आद्यन्त फैला हुआ रस नहीं है। इसलिए अङ्गी रस के स्थान पर शान्त रस को रखना संभव नहीं है वैसे भी राधा-कृष्ण के प्रेम-वर्णन में शान्त रस विरुद्ध ही होगा। विश्वनाथ ने कहा है कि शान्त रस का विरोध वीर, शृंगार, रौद्र, हास्य तथा भयानक के साथ है-

शान्तवस्तु वीर-शृंगार-रौद्र-हास्य भयानकै:। [8]

3. शृंगार रस के अङ्गी होने का प्रश्न–शृंगार रस का महत्त्व गर्गसंहिता के संदर्भ में उपर्युक्त दोनों रसों की अपेक्षा अधिक है। शृंगार शब्द शृंग और आर इन दो शब्दों के योग से निर्मित हुआ है। इसका अर्थ है शृंग (कामोद्रेक) का आर (प्राप्ति या वृद्धि)। तदनुसार जो रस

कामोद्रेक की प्राप्ति कराए वह शृंगार है। आचार्य विश्वनाथ ने कामदेव के उद्भेद अर्थात् अंकुरित होने को शृंग कहा है। उसकी उत्पत्ति का कारण जो उत्तम प्रकृति से युक्त हो शृंगार है। शृंगार का स्थायिभाव 'रति' है। यदि रति अनुरागयुक्त नायक और अनुरागयुक्त नायिका दोनों में समान रूप से हो तो शृंगार रस का स्थायी भाव बनने की सामर्थ्य रखता है। स्थायिभाव होने के कारण यह नायक-नायिका में स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है।

भरत ने नारयशास्त्र में सुखी जनों के बीच ही शृंगार रस की स्थिति मानी है जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो, ऋतु-माल्य आदि का सेवन कर रहे हों अर्थात् भौतिक दृष्टि से वे निश्चिन्त हों-

सुखप्रायेषु संपन्नः ऋतुमाल्यादिसेवकः।

पुरुषः प्रमदायुक्तः श्रृंगार इति संज्ञितः।। (9)

दशरूपककार धनञ्जय ने इस निश्चिन्तता और सुखप्रायकिता को और भी अधिक स्पष्ट किया है। उनका कथन है कि परस्पर अनुरक्त तरुण नायक-नायिका के हृदय में रमणीय देश-काल, वेष,भोग, इत्यादि के सेवन से आत्मा का प्रमुदित होना रति है। जब यही रति नायक-नायिका के अङ्गों की मधुर चेष्टाओं के द्वारा पुष्ट होती है तो शृंगार रस का उद्भव होता है।

शृंगार रस के सामान्यतः दो भेद किए जाते हैं- संयोग (संभोग) तथा वियोग (विप्रलम्भ)। इन भेदों की कल्पना नायक-नायिका के मिलन तथा विच्छेद के आधार पर की गयी है। दोनों स्थितियों में रति या आकर्षण का अभाव विद्यमान रहता है। इनके अतिरिक्त एक तीसरा भेद धनञ्जय ने 'अयोग' के रूप में किया हैं इसमें नायक-नायिका परस्पर आकृष्ट होकर भी परतन्त्रता या दैवयोग से मिल न सकें तो अयोग शृंगार होता है।

संयोगावस्था में नायक-नायिका की वृत्तियाँ बहिर्मुखी होती है और वियोग में अन्तर्मुखी। कवियों ने वियोग को प्रेम की कसौटी कहा है क्योंकि प्रेम की वास्तविक परीक्षा वियोग की स्थिति में ही होता है। इस काल में भी स्त्री-पुरुष का परस्पर उत्फट प्रेम या अनुराग रहता है। आचार्य भानुदत्त में विप्रलम्भ शृंगार को वियोग के कारणों के आधार पर आठ प्रकार माना है। ये कारण हैं-

(1) देशान्तर गमन, (2) गुरुजनाज्ञा, (3) अभिलाष (4) ईर्ष्या, (5) शाप, (6) समय, (7) देव तथा (8) उपद्रव।

गर्गसंहिता के प्रसङ्ग में हम देखते हैं कि इसके वृन्दावनखण्ड में पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्णतः शृंगारमय है। श्रीकृष्ण के रूप और गुणों पर मुग्ध श्रीराधा उनके दर्शनार्थ व्याकुल थी तब भाण्डीर वन में उन्हें देववाणी सुनायी पड़ी-

शोचं मा कुरु कल्याणी वृन्दारण्ये मनोहरे।

मनोरथस्ते भविता श्रीकृष्णेन महात्मनि।। (10)

राधा और कृष्ण का रास वृन्दावन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण क्रिया कलाप है। एक श्लोक में कहा गया है कि राधा ने स्वप्न में देखा कि यमुना के तट पर भाण्डीर वन के एक प्रदेश में नीलमेघ की कांति वाले पीत पटधारी श्रीकृष्ण मेरे निकट ही नृत्य कर रहे हैं। उसी समय राधा की नींद टूट गयी और शय्या से उठकर वे परमात्मा श्रीकृष्ण के वियोग से व्याकुल होकर उनके कमनीय रूप का चिन्तन करती हुई त्रिलोकी को भी तृणवत् मानने लगी। यहाँ स्वप्नदर्शन तथा किसी भी अन्य पदार्थ को उपेक्षा भाव से देखना काम दशा की स्थितियों के रूप में देखा गया है। कवि ने वैसा ही चित्रण किया है।

आगे चलकर संहिताकार कहते हैं कि जैसे ही कृष्ण को राधा ने अपने पिता की संकीर्ण गली में विचरण करते हुए देखा तो उन्हें देखते ही मूर्च्छित हो गयी (दृष्ट्वा तु मूर्छा समवाप सुन्दरी, 15.16)। यह दशा केवल एकाङ्गी राधा में ही नहीं रही अपितु उसके रूप-माधुर्य पर कृष्ण भी इस तरह मुग्ध हो गये कि मन ही मन उनके साथ विहार की अत्यधिक कामना करते हुए अपने भवन को लौटे-

कृष्णोऽपि दृष्ट्वा वृषभानुनन्दिनी, सुरूपकौशल्ययुतां गुणाश्रयम्।

कुर्वन्मनो रन्तुमतीव माधवो, लीलातनुः स प्रययौ स्वमन्दिरम्।। (11)

कृष्ण तो राधा को देखकर अपने भवन लौट गये किन्तु राधा भी कृष्ण के वियोग में विह्वल होकर अत्यधिक कामज्वर से संतप्तचित होकर (प्रभूतकामज्वरखिन्नमानसाम्।) अपने घर में अवस्थित रही तो उनकी सखी ललिता ने प्रश्न पूछा कि तुम इतनी विह्वल, अचेत

और अत्यन्त विह्वल क्यों हो रही है? यदि श्रीहरि को प्राप्त करना चाहती है तो उनके प्रति अपना स्नेह दृढ़ करो (15.19)। श्रीकृष्ण इस समय समस्त त्रिलोकी के सारे सुखों पर अधिकार किये हुए बैठे हैं। वे ही तुम्हारी दु:खाग्नि की ज्वाला बुझा सकते हैं। उनकी उपेक्षा करना अपने–आप में सनतापक होगा।

राधा का वियोग इतना उत्कट हो गया था कि वह स्पष्ट रूप से कहने लगी–

व्रजालङ्कारचरणौ न प्राप्तौ यदि मे किल।

कदाचिद् विग्रहं तर्हि न हि स्वं धारयाम्यहम्॥ (12)

अर्थात् यदि श्रीकृष्ण के चरण मुझे प्राप्त नहीं हुए तो मैं अपने शरीर को धारण करने में असमर्थ हूँ– यह मेरा निश्चय है। इस प्रकार चेतावनी की बात सुनकर उसकी सखी ललिता काँपने लगी। उसे डर हो गया कि कहीं राधा कुछ कर न बैठे। वह तुरत यमुना के तट पर श्रीकृष्ण के पास गयी जो माधवीलता की झाड़ी में भ्रमर गुंजार से व्याप्त एकान्त प्रदेश में कदम्ब के मूल में अकेले बैठे थे। स्पष्टत: यह श्रीकृष्ण की मनोदशा का चित्रण करनेवाला प्राकृतिक परिवेश था। उनकी उन्मनस्कता की ध्वनि इस वर्णन से निकलती है।

ललिता राधा की वियोगावस्था का चित्रण निम्नलिखित शब्दों में करती है–

यस्मिन् दिने च ते रूपं राधया दृष्टमद्भुतम्

तद् दिनात् स्तम्भतां प्राप्ता पुत्रिकेव न वक्ति किम्॥

अलंकारस्त्वर्चिरिव वस्त्रं भर्जरजो यथा।

सुगन्धि: कटुवद्यस्या मन्दिरं निर्जनं वनम्॥

पुष्पं बाणं चन्द्रबिम्बं विषकन्दमवेहि भो:।

तस्यै संदर्शनं देहि राधायै दु:खनाशनम्॥

ते साक्षिण: किं विदितं न भूतले सृजस्यलं पासि हरस्यथो जगत्।

यदा समानोऽसि जनेषु सर्वतस्तथापि भक्तान्भजसे परेश्वर। (13)

इस सन्दर्भ में राधा के स्तम्भन रूप सात्विक भाव का चित्रण है। वह काठ की पुतली के समान मूक हो गयी है। किसी से कुछ बोलती नहीं। अलंकार उसे अग्नि की ज्वाला के समान दाहक लग रहे हैं, सुन्दर वस्त्र भी भाड़ में तपी हुई बालुका के समान प्रतीत हो रहे हैं। उसके लिए सब प्रकार की सुगंध कड़वी लग रही है। परिचारिकाओं से भरा हुआ भवन भी निर्जन वन के समान हो गया है। हे श्रीकृष्ण! आपके विरह में मेरी सखी को फूल भी बाण के समान कष्टकारक लग रहे है और सब को शीतलता देनेवाला चन्द्रबिम्ब भी विष के कन्द के समान प्रतीत हो रहा है। इस प्रकार की विरहावस्था का वर्णन कवि ने इस प्रसङ्ग में किया है जो मानक काव्यों में प्राप्त होता है। कवि की मान्यता है कि विप्रलम्भ के बिना संयोग शृंगार की पुष्टि नहीं होती– **न विना विप्रलम्भेन संभोग: पुष्टिमश्नुते।**

यह संस्कृत के सभी काव्यों के लिए आदर्श सिद्धान्त है।

उपर्युक्त संदर्भ में ललिता भौतिक रूप से ऊपर उठकर श्रीकृष्ण की परमात्म रूप में दृष्टि रखती है। इसीलिए अन्त में कहती है कि आप सबके साक्षी है, अन्तर्यामी हैं। ऐसी कौन सी बात पृथ्वी पर हो रही है जो आपको ज्ञात न हो। आप ही इस जगत की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। परमेश्वर होने के कारण सबके प्रति आपका समान भाव है तथापि अपने भक्तों के प्रति आपका आदर और स्नेह बहुत अधिक होता है। इसी दृष्टि से आप श्रीराधा पर कृपा करें।

अब श्रीकृष्ण का वचन अत्यन्त उत्कृष्ट धरातल पर पहुँचकर ललिता के रोम–रोम को तृप्ति देता है। वे कहते हैं कि संसार का समस्त भाव केवल मुझपर ही प्रवाहित नहीं होता तथापि सबको अपनी ओर से मेरे प्रति प्रेम ही करना चाहिए। इस भूतल पर प्रेम से बढ़कर कोई दूसरा साधन लोक–परलोक बनाने का नहीं है–

प्रेमैव कर्त्तव्यमतो मयि स्वत:।

प्रेम्णा समानं भुवि नास्ति किञ्चित्॥ (14)

इन पंक्तियों में गर्गसंहिता के लेखक ने स्वयं भगवान् कृष्ण से इस संहिता के स्वारस्य का निरूपण करवाया है। संसार में प्रेम से बढ़कर कोई चीज नहीं है। कुछ आचार्यों ने इसे प्रेमाभक्ति के रूप में देखा है तो कुछ इसे भक्तिमूलक शृंगार की परिधि में लेते हैं। किन्तु यह निश्चित है कि यह शृंगार सामान्य प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर अनुराग से बहुत ऊपर है। यह दिव्य शृंगार है जिसका आलंबन उत्तम प्रकृति के पात्र ही हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण आगे कहते हैं कि भाण्डीरवन में जिस प्रकार राधा का मनोरथ उत्पन्न हुआ था' उसकी पूर्ति उसी रूप में होगी। सत् पुरुष सदा अहैतुक प्रेम का आश्रय लेते हैं अर्थात् उनके प्रेम में कोई स्वार्थ, दूसरे व्यक्ति की सम्पन्नता, सुन्दरता, वर्ण आदि कोई भौतिक कारण नहीं होते हैं। इस अहैतुक प्रेम को निश्चय ही सन्त लोग निर्गुण अर्थात् सुख-दु:ख-मोह से परे गुणातीत मानते हैं

अहैतुकं प्रेम च सद्भिराश्रितं।

तच्चापि सन्त: किल निर्गुणं विदु:॥ (15)

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने तथा श्रीराधा के बीच वैसा ही सम्बन्ध दिखाया जैसे दुग्ध और उसकी शुक्लता के बीच होता है। अर्थात् दोनों नाम के ही भिन्न है, वस्तुत: नहीं। एक धर्म हैं दूसरे धर्मी। अन्त में श्रीकृष्ण यह कहते हैं कि जो लोग राधा और कृष्ण में कुछ भी भेद नहीं मानते वे ही अपने अन्त: करण में भक्ति के लक्षण प्रकट होने के कारण गोलोकधाम में प्रवेश करते हैं। दूसरी ओर कृष्ण और राधा में भेदभाव समझनेवाले दुर्बुद्धि मानव काल के सूत्र में पड़कर तब तक नरक का दु:ख भोगते हैं जब तक सूर्य और चन्द्रमा की सत्ता है। श्रीकृष्ण का उपर्युक्त निरूपण भक्ति के अद्वैत के रूप में आध्यात्मिक चिन्तन की परिधि में प्रवेश करता है, किन्तु गर्गसंहिता का बाह्य, भाव राधा की सखी ललिता के अग्रिम सन्देश के रूप में निरूपित हुआ है। वह एकान्त में राधा के पास जाकर स्पष्ट कहती है कि जैसे तुम श्रीकृष्ण को चाहती हो वैसे ही मधुसूदन कृष्ण भी तुम्हारी इच्छा रखते हैं। तुमदोनों का तेज भेद-भाव से रहित एकात्मक है। अज्ञानवश ही लोग उसे राधा का प्रेम और कृष्ण का प्रेम ऐसा नाम देकर द्वैतभाव में ले आते हैं-

त्वमिच्छसि यथा कृष्णं तथा त्वां मधुसूदन:।

युवयोर्भेदरहितं तेजस्त्वेकं द्विधा जनै:॥ (16)

इसी प्रसङ्ग में राधा को तुलसीव्रत करने का परामर्श मिलता है। तदनुसार वह धर्मशास्त्रीय विधि से व्रत रखती है, जो श्रीकृष्ण की रासलीला की पूर्वपीठिका बन जाती है।

गर्गजी के निर्देश के अनुसार आश्विन पूर्णिमा से लेकर चैत्र पूर्णिमा तक तुलसी सेवन व्रत का अनुष्ठान राधा ने श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए किया।

श्रीकृष्ण यद्यपि राधा के साथ अपने अद्वैतात्मक प्रेम को नित्य तथा अभिन्न मानते हैं तथापि लोकलीला के लिए वे राधा के प्रेम की परीक्षा भी लेते हैं। तभी तो गर्गसंहिता के कवि ने कहा है-

राधिकायाश्च विज्ञाय तुलसीसेवने तप:।

प्रीतिं परीक्षन् श्रीकृष्णो वृषभानुपुरं ययौ। (17)

इस प्रसङ्ग में कवि ने वृषभानु भवन का अत्यन्त रमणीय, कलात्मक एवं काव्यपूर्ण वर्णन किया है। उस भवन में जाते समय श्रीकृष्ण ने गोपाङ्गना का रूप धारण कर लिया। जिससे किसी व्यक्ति को सन्देह न हो कि कोई पुरुष उस भवन में प्रवेश कर रहा है। राधा ने गोपिकावेशधारी श्रीकृष्ण का स्वागत किया और उन्हें बताया कि कृष्ण का रूप ही तुम्हारे पास है। अन्त तक श्रीकृष्ण ने राधिका को अपने रूप का रहस्य नहीं बताया और कहा कि प्रात: काल फिर मैं यहाँ आऊँगा। दूसरे दिन श्रीकृष्ण के पहुँचने पर राधा ने कृष्ण की बहुत प्रशंसा की। यद्यपि गोपिकावेशधारी श्रीकृष्ण ने अपनी निन्दा ही की थी। यह प्रसंग बहुत कुछ कालिदासरचित कुमारसंभव के पञ्चम सर्ग से प्रभावित प्रतीत होता है जहाँ ब्रह्मचारी के वेश में भगवान् शिव पार्वती के मनोरथ को जानकर शिव की निन्दा करते हैं और पार्वती उनके तर्कों का क्रमश: खण्डन करती जाती है। गर्गसंहिता में भी गोपिका के वेश में आये हुए श्रीकृष्ण राधा को कहते हैं कि

कृष्ण बहुत दुष्ट है वह गोपियों को छेड़ता रहता है, वह जाति से गोप, वर्ण से काला-कलूटा और धन या वीरता से सर्वथा वंचित है। वह न सुशील है न रूपवान ही। हे सुन्दरी! ऐसे पुरुष पर तुमने जो प्रेम किया है वही ठीक नहीं है। उस दुष्ट पुरुष को अपने मन से निकाल दो-

जात्या स गोपः किल कृष्णवर्णोऽधनी न वीरो न हि शीलरूपः।

यस्मिंस्त्व प्रेम कृतं सुशीले त्यजाशु निर्मोहनमद्य कृष्णम्॥ (18)

इसी प्रकार के निन्दा प्रसङ्गों से कृष्ण ने राधा के प्रेम की परीक्षा की।

राधा ने इन सभी युक्तियों का खण्डन अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए ठीक पार्वती के समान ही किया। उसने कहा कि गोप लोग तो सदा गोपालन करते ही हैं वे गोरज की गंगा में नहाते हैं, उसका स्पर्श करते हैं। गौओं के उत्तम नामों का जप करते हैं, उन्हें दिन-रात गौओं के सुन्दर मुख का दर्शन होता है। मेरी बुद्धि तो कहती है कि इस भूतल में गोप जाति से बढ़कर दूसरी कोई जाति ही नहीं है (जातिःपरा न विदिता भूवि गोपजातेः।)' श्रीराधा ने कृष्ण को काला-कलूटा बताने का भी प्रबल खण्डन किया कि श्याम सुन्दर कृष्ण की श्याम-प्रभा से विलसित सुन्दर कला का दर्शन करके उन्हीं में मन लग जाने के कारण भगवान् नीलकंठ (शिव) दूसरों के सुन्दर मुख को छोड़कर जटाजूट, हलाहल विष, भस्म, कपाल और सर्पधारण करके उस काले-कालूटे के लिए ही पागलों के समान दौड़ते-फिरते हैं-

तत्कृष्णवर्णविलसत्सुकला समीक्ष्य,

तस्मिन्विलग्नमनसा सुसुखं विहाय।

उन्मत्तवद्व्रजति धावति नीलकण्ठो,

विभ्रत्कपर्दविषभस्मकपाल सर्पान्॥ (19)

इस प्रकार राधा ने कठिन प्रेम-परीक्षा देकर श्रीकृष्ण का हृदय जीत लिया। श्रीकृष्ण ने देखा कि प्रियतमा राधा मेरे दर्शन के लिए उत्कण्ठित है। इसके अंग-अंग में पसीना चल रहा है और मुख पर आसुओं की धारा बह रही है तो उन्होंने तत्काल अपना पुरुष रूप धारण कर लिया ।

इस प्रसंग को कुछ विस्तार देने का उद्देश्य यह है कि राधा-कृष्ण के शृंगार को सर्वाधिक महत्त्व देनेवाली गर्गसंहिता का मूल भाव या स्वारस्य प्रकट हो सके। वृन्दावनखण्ड के बहुत बड़े अंश में राधा-कृष्ण के शृंगार-धारण, रास, जल-विहार और वन-विहार का वर्णन किया गया है। इसी के आलोक में अन्य सभी रसों को आत्मसात् करके शृंगार रस की प्रतिष्ठा इस संहिता में है जो सभी खण्डों में न्यूनाधिक रूप से व्याप्त है। राधा-कृष्ण की रासलीला जो भी आध्यात्मिक रूप हो, भौतिक दृष्टि से वह शृंगार की परिधि में ही अवलोकनीय है।

श्रृंगार रस की व्यापकता- गर्गसंहिता के दस खण्डों में शृंगार रस व्याप्त है गोलोकखण्ड में अनेक आख्यानों तथा कृष्ण-विषयक सामग्री के बीच सोलहवाँ अध्याय जो भाण्डीर वन में राधा-कृष्ण के ब्रह्मा द्वारा विवाह संस्कार सम्पन्न कराने का वृत्त वर्णित है वह भी शृंगार प्रधान है। उसमें यत्र-तत्र भक्ति के तत्त्व अपना सिर उठाते हैं तथापि शृंगार उन सभी उपवृत्तों के ऊपर प्रतिष्ठत हैं। वहाँ भी प्रणयलीला के वृत्तान्त अधिक प्रभावी हैं। उदाहरणार्थ राधा और कृष्ण यमुना में जल विहार करते हैं तथा राधा के हाथ से छीनकर एक कमल ले भागते हैं ऐसी स्थिति में राधा भी उनका पीछा करते हुए पीताम्बर, बाँसुरी तथा वेंत की छड़ी छीन लेती है। बहुत मान-मनुहार के बाद अपनी-अपनी छीनी हुई वस्तुएँ वे दोनों एक-दूसरे को लौटाते हैं।' यह कृष्ण की बाललीला नहीं अपितु नायिका-विशेष के साथ प्रणयलीला की श्रेणी में संकलनीय इतिवृत्त है।

वृन्दावनखण्ड तो कृष्ण और राधा के रास, जल-विहार, वन विहार इत्यादि शृङ्गारोचित कार्यों का वर्णन-स्थल ही है। गोवर्धन परिसर में श्रीकृष्ण अपनी लीलाओं से शृंगार की अद्भुत छवि प्रस्तुत करते हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि रास के प्रसंग में विविध अद्भुत कार्यों का संपादन श्रीकृष्ण द्वारा होता है। जैसे-श्रीकृष्ण शंखचूड़ का वध करते हैं, कालियनाग का दमन करते हैं, बलराम धेनुकासुर को मारते हैं, तथा इसी प्रकार अन्य दैत्यों का भी उद्धार किया जाता है।

गिरिराजखण्ड में गोवर्धन पूजा से संबद्ध विषयों का तथा कृष्ण के कार्यों का निरूपण गर्गसंहिता में है। यह खण्ड अवश्य ही शृंगार रस से रहित है तथापि श्रीकृष्ण की भगवत्ता (प्रभावशाली होने) की परीक्षा का स्थल है। यह एक रस ही नहीं अपितु रसचक्रचूड़ामणि भगवान् कृष्ण की महत्ता का निरूपण करनेवाला खण्ड है।

गर्गसंहिता का चतुर्थ खण्ड माधुर्यखण्ड के नाम से विख्यात है। जिसमें कहा गया है कि गोपियाँ ऋषिरूप हैं। गोपियों की चीरहरण-लीला एवं अन्य स्त्रियों की कृष्ण के प्रति अनन्य प्रीति का वर्णन भी इसमें किया गया है। व्रज की गलियों में पद्मिनी स्त्रियाँ कृष्ण से हास-परिहास करती हैं। उसमें आठ सात्त्विक भावों की चर्चा संहिताकार ने की है और प्रेम के लक्षण से संयुक्त स्त्रियों का भी निरूपण किया है-

प्रेमलक्षणसंयुक्ता: श्रीकृष्णहू तमानसा:।

अष्टभि: सात्त्विकैर्भावै: सम्पन्नास्ताश्च योषित:॥ (20)

सात्त्विक भाव मन से उत्पन्न होनेवाले भाव हैं। मन की एकाग्रता से सत्व की निष्पत्ति होती है। भरत ने कहा है कि इसका अनुकरण अन्यमनस्क भाव से नहीं किया जा सकता (स न शक्योऽन्यमनसा कर्तुमिति) । इस प्रसंग में भरत ने निम्नलिखित रूप से आठ सात्त्विक भावों का उल्लेख किया है-

स्तम्भ स्वेदोऽथ रोमाञ्च: स्वरभेदोऽथ वेपथु।

वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विका मता:॥ (21)

ये सात्त्विक भाव शृंगार रस के प्रसंग में ही वर्णनीय होते हैं। कभी-कभी दूसरे रसों में भी इनकी स्थिति देखी जाती है। उदाहरणार्थ- शरीर के अंगों का संचालन बन्द हो जाना स्तंभ है जो हर्ष, भय, क्रोध, लज्जा इत्यादि के कारण होता है। इसी प्रकार रोमकूपों से जलबिन्दु का प्रकट होना स्वेद है जो हर्ष, क्रोध, रति-प्रसंग, मन:- संताप आदि के कारण होता है। इसी प्रकार अन्य सात्त्विक भाव है। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग में जब स्त्रियाँ प्रेम-लक्षण से संयुक्त हैं तो उनके सात्त्विक भाव शृंगार-विषयक ही हो सकते हैं। संहिताकार ने तो व्रज की गलियों में दौड़नेवाली उन स्त्रियों का यहाँ तक वर्णन किया है कि वे प्रेम के कारण परमहंस की स्थिति में पहुँच गई थी, उनमें जड़-चेतन का विवेक नहीं रह गया था, कभी चुप हो जाती तो कभी बोलने लगती, लज्जा और चिन्ता के भाव से वे ऊपर उठ गयी थी। बलपूर्वक कृष्ण को वे चूम लेती थी। रासक्रीड़ा में वे कृष्ण के कन्धों पर अपनी बाहें रखकर उन्हें अपने वश में कर चुकी थी।

जब हम गर्गसंहिता के मथुराखण्ड को देखते हैं तो इसमें मुख्यत: कंस के द्वारा निमंत्रित कृष्ण की मथुरालीला का वर्णन प्राप्त होता है। विभिन्न राक्षसों, मल्लों के बाद कंस और उसके अत्याचारी भाईयों का वध श्रीकृष्ण कर देते हैं। बाद में गोपियों को आश्वस्त करने के लिए उद्धव को वे व्रज में भेजते हैं। उद्धव लौटकर कृष्ण को वहाँ की गोपियों और विशेषकर राधा के करुण-विलाप का वर्णन सुनाते है। इस खण्ड में भी कवि ने श्रीकृष्ण को कदलीवन में राधा से मिलने का अवसर प्रदान किया है (अध्याय-20)। अत: वीर और अद्‌भुत रस से परिपूर्ण इस मथुराखण्ड में भी अङ्गी शृंगार रस की उपेक्षा नहीं हुई है।

द्वारकाखण्ड में कृष्ण के वीर कर्मों का मुख्यत: वर्णन है । मथुरा से कृष्ण द्वारका चले जाते है। रुक्मिणी से उनका परिणय होता है। क्रमश: अन्य रानियाँ भी विवाह के द्वारा उन्हें प्राप्त होती हैं। इस खण्ड में भी तीन अध्याय (16-18) राधा और कृष्ण के शृंगार को समर्पित है। ये अध्याय आकस्मिक या अनवसर नहीं है, अपितु गर्गसंहिता के स्वारस्य के अनुरूप समाविष्ट किए गये हैं क्योंकि शाश्वत नायक श्रीकृष्ण और उनकी शाश्वत नायिका श्रीराधा की उपेक्षा इस महावाक्यवाली संहिता में कभी नहीं हो सकती थी। इसके लिए उचित अवसर का अन्वेषण कवि को नहीं करना था। सबकुछ स्वाभाविक ही था।

इस संहिता का विश्वजित्खण्ड लम्बाई की दृष्टि से दूसरा स्थान रखता है। जिसमें पचास अध्याय हैं। यह आद्यन्त दिग्विजय यात्रा से सम्बद्ध है। कृष्ण और उनके परिवार के सेनापति तात्कालिक भारत में अन्याय और अधर्म के प्रतिरोध के लिए एवं धर्म की स्थापना के लिए यत्र-तत्र भीषण-युद्धों में भाग लेते हैं। जहाँ धर्म हैं वही विजय है- (यतो धर्मस्ततो जय:)- इस उद्घोष के समर्थन में यह पूरा खण्ड लगा हुआ है। इसी में महाभारत युद्ध के प्रसंग भी है और एक आदर्श राजा की दिग्विजय यात्रा के विवरण भी हैं। एक यही खण्ड

है जिसमें वीररस को प्रधानता दी गई है। शृंगार इसमें उपेक्षित है किन्तु यह तथ्य है कि शृंगार का पूर्ण उपभोग वीर द्वारा ही होता है अत: इसे राधा–कृष्ण के प्रेम का अंग कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गर्गसंहिता का आठवाँ खण्ड कृष्ण के अग्रज बलराम को समर्पित है, जिसे अनुरूप शीर्षक दिया गया है बलभद्रखण्ड। बलभद्र की पूजा की पद्धति और स्तुति पर इसमें चार अध्याय (10–13) समर्पित हैं तथापि बलराम और कृष्ण की ब्रजलीला की उपेक्षा इसमें नहीं की गयी है। यह खण्ड विशेष रूप से गद्यात्मक है। भागवत– महापुराण के पंचम स्कन्ध के समान इसमें लालित्यपूर्ण गद्यवाक्यों का प्रदर्शन है। व्रजलीला को समर्पित षष्ठ अध्याय में रासमण्डल की चर्चा की गयी है–**'गोपीयूथै: पृथक्-पृथक् श्रीकृष्णो व्रजमण्डले रासमण्डलं चकार।'** रासमण्डल की जो भी व्याख्या की जाये वह अन्तत: नायक–नायिका की शृंगार चेष्टा के रूप में ही है।

इस संहिता का नवम खण्ड विज्ञान खण्ड के रूप में है जिसमें दस अध्याय हैं। यह दर्शनशास्त्र और कर्मकाण्ड के विवेचन से भरा है। इसमें सकाम और निष्काम भक्ति का भी वर्णन है। भक्ति की महिमा बतायी गयी है। श्रीकृष्ण के चरितामृत के पान में मत्त होकर परमहंस लोग विचरण करते हैं। इस प्रसंग में कई स्त्री– –पुरुष भक्तों के नाम लिए गये है। कुछ तो ऐसे हैं जो राक्षस योनि में रहते हुए विष्णु के विभिन्न अवतारों से वैर ठानकर उनके हाथों मारे जाने से परमपद प्राप्त कर सके। यह भक्ति की विशिष्टता का निरूपण है। संहिताकार ने सबका साररूप एक वाक्य दिया है–

तस्मात् केनाप्युपायेन मन: कृष्णे निवेशयेत्। (22)

भक्ति भी एक प्रकार की रति है जो देव आदि के विषय में होती है। अत: शृंगार से इसका कुछ–न–कुछ संबंध रहता ही है।

यदि हम गर्गसंहिता के अन्तिम खण्ड–अश्वमेध खण्ड का अवलोकन करें तो देखेंगे कि यह न केवल विशालतम है (अध्ययों की संख्या–62), अपितु उपसंहार रूप में होने क कारण शिष्ट, अवशिष्ट विविध विषयों का संघटन भी करता है। इसमें विजय के रूप में वीर–रस का वर्णन है, गुरू सांदीपनि के ज्ञानोपदेश के रूप में शान्त रस है तो वृन्दावन में राधा–कृष्ण के मिलन और रासलीला के रूप में शृंगार रस का भी उद्भावन है। इसके छह अध्यायों में यह शृंगार रस फैला हुआ है । (अध्याय 41–46)।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होगा कि गर्गसंहिता का कोई ही खण्ड ऐसा है जिसमें राधा–कृष्ण की मधुर–लीलाओं, शृंगार–पूर्ण चेष्टाओं तथा शृंगारोचित भावों का निदर्शन नहीं मिलता। वस्तुत: शृंगार रस इस संहिता में व्यापक रूप से फैला हुआ है। इसलिए गर्गसंहिता के अंगी रस के रूप में शृंगार रस को निर्दिष्ट करने में कहीं संकोच नहीं होता। यह अवश्य है कि केवल एक रस से कविता या प्रबन्ध–काव्य का कार्य नहीं हो पाता। रुचि के वैविध्य तथा प्रबन्ध–वक्रता की दृष्टि से रसवैविध्य के कारण ही निरन्तर रसमयता बनी रहती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि राधा–कृष्ण के शृंगार–वर्णन को प्रमुख स्थान देते हुए गर्गसंहिता की रचना हुई है। कृष्ण के अद्‌भुत कार्यों के बीच–बीच में यह प्रणयलीला प्रवृत्त होती है उसका वर्णन संहिताकार ने विशेष रूप से किया है। अतएव शृंगार रस को इस काव्यात्मक संहिता का प्रमुख रस मानकर इसके अंग के रूप में आवश्यकता के अनुसार विविध रसों को भी अवकाश प्रदान किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण को उनके भक्त नित्यलीलालीन कहते हैं और राधा उनकी नित्य प्रेमिका और रासेश्वरी हैं।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. गर्गसंहिता, गोलोकखण्ड 15.34
2. गर्गसंहिता गोलोकखण्ड, 1.2
3. गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड 17.9
4. आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक 4.5
5. विश्वनाथ साहित्यदर्पण 3.316
6. काव्यप्रकाश– 7.47
7. गर्गसंहिता, विज्ञानखण्ड 2.4

8. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण 3.257
9. नाट्यशास्त्र, 6.46
10. गर्गसंहिता, वृन्दावन खण्ड 15.4
11. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 15.17
12. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 15.22
13. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 15.25-28
14. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 15.30 (उत्तरार्ध)
15. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 15.31 उत्तरार्ध
16. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 15.35
17. गर्गसंहिता वृन्दावनखण्ड 17.3
18. गर्गसंहिता, वृन्दावनखण्ड 18.18
19. गर्गसंहिता वृन्दावनखण्ड 18.23
20. गर्गसंहिता, माधुर्यखण्ड 4.8
21. नाट्यशास्त्र 7.94
22. गर्गसंहिता, विज्ञानखण्ड 4.29 (पूर्वार्द्ध)